पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा ३५६-३६५, ता. ९-४-१९८९
भिंड, प्रवचन नंबर P१६

ये समयसारजी परमागम शास्त्र है, उसका सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, ज्ञान का अधिकार है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार यानि द्रव्य सामान्य का अधिकार और जो द्रव्य सामान्य शुद्धात्मा है, वो पारिणाम से सहित होने पर भी परिणाम से रहित है। परिणाम से सहित जानना व्यवहार है, परिणाम से सहित मानना अज्ञान है और परिणाम से रहित जानना-मानना सम्यक है। परिणाममात्र से आत्मा भिन्न होने से आत्मा, परिणाम का कर्ता नहीं है। अकर्ता ज्ञायक है। ऐसी, वो बात बहुत दिन से चली।

ऐसा जो अपना शुद्धात्मा है, उसको जानने का उपाय क्या है? ये कैसे जाना जाये? होने पर भी क्यों जानने में नहीं आता है? जगत को क्यों जानने में नहीं आता है, होने पर भी? उसका अस्तित्व तो है। क्या कहा? जैसे देह-मन-वाणी जानने में आता है, अंदर का क्रोध-मान-माया-लोभ का परिणाम, सब जानने में आता है, शुभाशुभभाव भी जानने में आता है, हर्ष-विषाद का भाव भी जानने में आता है, क्योंकि वो है, अस्तिरूप से है, तो जानने में आता है। ऐसे जो देहादि की अस्ति हो, वो जानने में आता है। तो देहादि से भिन्न परमात्मा अंदर विराजमान है, वो भी है। जैसे देह भी है ऐसे आत्मा भी है, अस्तिरूप है। अस्तित्व नाम का उसका सामान्य धर्म है। अस्तित्व यानि होना, उसका होना, ऐसा आत्मा का एक स्वभाव है।

पहले तो ये स्वभाव का निर्णय करना चाहिए। यथार्थ निर्णय के बाद जब प्रयोग का काल आता है, तब, वो ज्ञान की पर्याय में होने पर भी क्यों जानने में नहीं आता है? इसका कारण ज्ञान की पर्याय का व्यवहार अनंतकाल से प्रगट हो रहा है। तो ज्ञान की पर्याय के व्यवहार में आत्मा जानने में नहीं आता है। ज्ञान की पर्याय का व्यवहार क्या और ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या? कि ज्ञान की पर्याय का व्यवहार, इसका नाम कि जो ज्ञान देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य करता है, वो ज्ञान की पर्याय का व्यवहार है। अर्थात् जहाँ तक वो पर्याय आत्मा को नहीं जानती है और अकेली देव-गुरु-शास्त्र को जानती है, वो ज्ञान की पर्याय का नाम व्यवहार भी नहीं है, मगर अज्ञान है। ऐसे अनादिकाल का अज्ञान चालू है। वो पक्ष हो गया उसको।

मैं पर को जाननेवाला हूँ, ऐसा अंदर में मिथ्या-अभिप्राय, मिथ्या-श्रद्धान पड़ा है क्योंकि जैसा अनुभव है, उसकी श्रद्धा ऐसे कर लिया। अनुभव क्या है? कि पर को जानता हूँ क्योंकि इन्द्रियज्ञान का विषय परावलम्बी है, तो पर को प्रसिद्ध करती है। तो पर को जाननेवाला हूँ - ऐसा श्रद्धान विपरीत भी हो गया। तो ज्ञान की पर्याय जब पर को जानती है, उसका नाम व्यवहार है। तो ये व्यवहार जब उत्पन्न होता है, परावलम्बी, पर को प्रसिद्ध करनेवाली ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है, उसमें शुद्धात्मा तिरोभूत हो जाता है। तिरोभूत यानि होने पर भी नहीं दिखाई देता है।

अभी आत्मा है, ऐसा तो निर्णय किया कि मैं हूँ। मैं हूँ, फिर भी मेरे को मेरा शुद्धात्मा का दर्शन

क्यों नहीं होता? मेरे से पहले अनंत आत्मायें हो गईं, उन्होंने, (वे) अपने अस्तित्व का ज्ञान करके, उसमें लीन होकर परमात्मा हो गए। अनंत आत्मा सिद्ध हो गईं। पहले वो ही आत्मा बहिरात्मा था, वो ही बहिरात्मा अंतरात्मा होता है, अंतरात्मा होने के बाद वो ही आत्मा परमात्मा हो जाता है। आत्मा तो एक है, उसकी अवस्था क्रम-क्रम से तीन होती हैं। तीन अवस्था अक्रम से नहीं होती हैं। जब बहिरात्मदशा है, अज्ञान, मिथ्यादर्शन, तब अंतरात्मदशा प्रगट नहीं होती है। और जब मैं पर को जानता नहीं हूँ, जाननहार जानने में आता है, ऐसा अंदर का बल जो आता है, तो उपयोग अभिमुख होकर आत्मा का दर्शन हो जाता है। तो बहिरात्मदशा गई, व्यय हो गया और अंतरात्मदशा प्रगट होती है। उसका नाम साधक है, उसका नाम साधक हो गया और ये अंतरात्मदशा भी थोड़े टाइम के लिये होती है, सादि-सांत है। साधकदशा, शुरुआत होती है नया और बाद में उसका अंत होकर परमात्मा होता है।

तो ये आत्मा का तीन प्रकार का परिणाम है, एक तो मिथ्यादर्शन आदि अज्ञान पर्याय बहिरात्म (दशा) गई और मोक्षमार्ग प्रगट हुआ। आत्माश्रित निश्चय मोक्षमार्ग, यानि जो ज्ञान आत्मा का है, उसको जाना, जानते-जानते वही मैं हूँ, ऐसी प्रतीति, श्रद्धान प्रगट हुआ और आचरण भी प्रगट थोड़ा हुआ, स्थिरता। उसका नाम मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, तो ये अंतरात्मा हो गया। और बाद में वही आत्मा परमात्मा हो जाता है।

तो ये अंतरात्मा होने की, होने के लिये, क्या ज्ञान हो तो आत्मा को जाने, दर्शन करे? तो इधर प्रकरण चलता है कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है, (वह समझ)। अनंतकाल से उसने द्रव्य का निश्चय जाना नहीं और पर्याय का निश्चय भी जाना नहीं और कभी ऊपर-ऊपर से द्रव्य का निश्चय गुरु-कृपा से आ जावे, तो एक दूसरा शल्य अनादिकाल का खड़ा हो जाता है कि मैं पर को तो जानता हूँ। पर को नहीं जानूँ तो स्व-पर को तो जानता हूँ। आहाहा! अनुभव के पहले परप्रकाशक ज्ञान भी अज्ञान है और अनुभव के पहले स्वपरप्रकाशक ज्ञान भी अज्ञान है। आहाहा! अनुभव के पहले जो निगोद में स्वपरप्रकाशक की ज्ञप्ति है, स्व-पर का प्रतिभास होता है, ज्ञान की स्वच्छता में, उपयोग लक्षण में....

ऐसे जब गुरु मिले, गुरु को शिष्य ने पूछा कि प्रभु आपकी कृपा से दृष्टि का विषय तो ज्ञान में आया। ज्ञान में आया यानि जानने में आया कि मेरा शुद्धात्मा बंध-मोक्ष के परिणाम से रहित है। सर्वथा रहित है? हाँ! कि सर्वथा रहित है। पहले सर्वथा में आ जाये तो कथंचित् भी बाद में आता है। आहाहा! मगर पहले सर्वथा से अभिन्न माना, बाद में, जैनदर्शन में आया तो कथंचित् अभिन्न में रहा। पर सर्वथा भिन्न तक आत्मा पहुँचा नहीं है, तो अनुभूति नहीं होती है। आहाहा!

ऐसे जब सर्वथा में मेरा आत्मा परिणाममात्र से भिन्न है, ऐसे गुरु-कृपा से अनुमान ज्ञान में आया, आत्मा आया। अनुमान ज्ञान में अनुमान ज्ञान नहीं आया। क्या कहा? अनुमान ज्ञान की जो मानसिक पर्याय है, मन के द्वारा, आत्मा का कि मन द्वारा आत्मा को जान लेता है। कड़ी ल्ये छे, इसका अर्थ जाणी ल्ये छे (जान लेता है), गुजराती। आहाहा! तो ऐसे गुरु-कृपा से, अपनी योग्यता और गुरु-कृपा....तो ये दृष्टि का विषय, दृष्टि में आने के पहले मानसिक ज्ञान में आ जाता है और आने के बाद, उसको साक्षात् करने के लिये मानसिक ज्ञान काम आता नहीं है। इसके लिये तो ज्ञान की पर्याय का निश्चय प्रगट होना चाहिए। तो ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है? और ज्ञान की पर्याय का व्यवहार क्या

है, वो बाद में आयेगा। ज्ञान की पर्याय का निश्चय जिसको आता है, उसको साक्षात् आत्मा की अनुभूति होती है। ज्ञान की पर्याय में व्यवहार खड़ा होता है, तहाँ तक आत्मदर्शन होनेवाला नहीं है।

द्रव्यलिंगी मुनि हो जाये, नग्न दिगंबर मुनि। मुनि हमेशा नग्न होते हैं। कपड़ेवाला मुनि होता नहीं है। आहाहा! तो ऐसे नग्न मुनि हो जाये, राजपाट छोड़कर, पाँच महाव्रत, २८ मूलगुण निरतिचार। आहाहा! जिसमें कोई दोष न लगे, ऐसी सहज दशा हो, ऐसा होने पर भी, जहाँ तक उसके पास ज्ञान की पर्याय का निश्चय प्रगट नहीं होता है... पाँच महाव्रत को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय तो व्यवहार है। नग्नता को जाने, नग्न को, उसकी ज्ञान की पर्याय का नाम व्यवहार है। देव-गुरु-शास्त्र को जाने, उसका नाम भी व्यवहार है। आहाहा! पर्याय को जाने उसका नाम भी व्यवहार है। गुण-भेद को जाने, उसका नाम भी ज्ञान की पर्याय का व्यवहार है। ऐसी ज्ञान की पर्याय अनंत-अनंत-अनंतकाल से प्रगट हो रही है। ज्ञान की पर्याय का व्यवहार प्रगट हो रहा है। आज तक अनादि मिथ्यादृष्टि के लिए ज्ञान की पर्याय का निश्चय, एक समय के लिए (भी) प्रगट हुआ नहीं है। वो ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है, इसके स्वरूप की चर्चा चलती है। देखो!

अब, 'ज्ञायक (-जाननेवाला)' ज्ञायक, जाननेवाला और जानने में आनेवाला ये पुद्गल, वो भूल है। जाननेवाला भी आत्मा और जानने में आनेवाला भी आत्मा। आत्मा ही ज्ञायक और आत्मा ही ज्ञेय, वो भी व्यवहार है। आत्मा ज्ञाता और पुद्गलद्रव्य मेरा ज्ञेय, वो अज्ञान है, व्यवहार भी नहीं है। आहाहा! क्योंकि निश्चय के पहले व्यवहार प्रगट होता नहीं है। आहाहा! आत्मा का पक्ष आता है, तो भी अनुभूति नहीं होती है। तो कोई गाँव का, कोई संस्था का, कोई व्यक्ति के पक्षपात में चढ़ जाये, तो-तो दिल्ली बहुत दूर है। आहाहा! वो तो प्रमाण से बाहर निकल गया। कोई संस्था के साथ मेरा संबंध नहीं है। आहाहा! भिण्ड संस्था हो, भिण्ड की, जयपुर की संस्था हो कि सोनगढ़ की संस्था हो, आहाहा! किसी के साथ मेरा संबंध नहीं है। आहाहा!

मैं आत्मा हूँ, ऐसे पक्ष में भी अनंतानुबंधी कषाय का दोष उत्पन्न होता है। तो पर के पक्ष की बात तो, आहाहा! ऐसा सुअवसर आया है, तो जीव पक्षपात में चढ़ गया। आहाहा! अपना अहित हो जाता है, उसको मालूम (नहीं)। आहाहा! पक्षपात में राग-द्वेष उत्पन्न होता है। मध्यस्थ ज्ञान में वीतरागभाव प्रगट हो जाता है। आहाहा! तो बाहर की बात तो दूर रहो, इधर तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि जो ज्ञान परिणाम को, भेद को.... परिणाम का नाम ही परद्रव्य है, अध्यात्म में तो परिणाम का नाम ही (परद्रव्य है)। आहाहा! उसको जाने वो भी व्यवहार है। वो निश्चय ज्ञान की पर्याय प्रगट नहीं होती है।

तो **'ज्ञायक (-जाननेवाला) चेतयिता, ज्ञेय जो पुद्गलादिका परद्रव्य उनका है या नहीं?'** जो ये पुद्गल है तो उसका है ज्ञायक, उसको जाननेवाला है कि नहीं? उसका है कि नहीं? **'इसप्रकार यहाँ उन दोनोंके तात्विक संबंधका विचार करते हैं:-'** ज्ञाता और ज्ञेय। ज्ञाता भी इधर है और ज्ञेय भी इधर है। उसका दो भेद करना, वो भी अज्ञान है। मैं ही ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय वो व्यवहार नहीं है, प्रथम अज्ञान है। अभेद होने के बाद भेद का नाम व्यवहार पड़ता है। तो मैं ज्ञाता और मैं ज्ञेय, इतने भेद में भी साध्य की सिद्धि नहीं होती है। तो मैं ज्ञाता, आहाहा! और चौबीस तीर्थंकर की प्रतिमा, नसिया में

मैंने दर्शन किया, वो मेरा ज्ञेय, ये तेरा ज्ञेय नहीं है, भूल गया तू। आहाहा! ये सचमुच तेरा ज्ञेय नहीं है। हाँ! जो तेरा ज्ञेय हो, तो उसको जानने से आनंद आना (चाहिए)। इसमें शास्त्र की ज़रूरत नहीं है। आत्मा की साक्षी होती है कि अनंत-अनंतकाल से साक्षात् तीर्थंकर भगवान के समवशरण में गये और उसको ज्ञेय बनाया। आत्मा ज्ञाता और भगवान मेरा ज्ञेय है, तीर्थंकर परमात्मा। आहाहा! वो ज्ञान की पर्याय का व्यवहार खड़ा हो गया, निश्चय गायब हो गया। आहाहा! आत्मदर्शन नहीं होता उसमें।

तो '**इसप्रकार यहाँ उन दोनोंके तात्विक संबंधका विचार करते हैं:-**' ज्ञाता और ज्ञेय, ज्ञाता इधर और ज्ञेय ये (पर) है। तो इसका तात्विक संबंध, पारमार्थिक संबंध, सच्चा संबंध क्या है? ये सच्चा संबंध है कि झूठा संबंध है? परीक्षा करके निर्णय करते हैं। '**यदि चेतयिता**...' ये तर्क लगाया, यदि जो चेति यानि जाननेवाला.....ये आत्मा है, जाननहार है। करने की बात तो एजेंडा पर है ही नहीं और ज्ञायक में भी नहीं है और ज्ञान की पर्याय में करने की बात तो है ही नहीं। अभी रहा जाननहार, आत्मा और उसकी ज्ञान की पर्याय, उसमें ज्ञान की क्रिया होती है। वो ज्ञान की क्रिया का विषय क्या है? जो पर विषय है, तो अज्ञान है। वो ज्ञान का विषय बदलकर स्व आता है, तो अनुभूति होती है।

'**यदि चेतयिता..**' आहाहा! अभी तो करने के अंदर उलझ रहा है। उलझ रहा है ना। विपरीत, ये करना और ये नहीं करना। ये छोड़ना, ये ग्रह्यना। आहाहा! हें?

बाबूजी:- बोझल हो रहा है।

उत्तर:- आहाहा! प्रभु! वो तो दिल्ली बहुत दूर है। जो आत्मा का स्वभाव शुभाशुभभाव नहीं होने पर भी, उसके ऊपर सावधानी रखते हैं, परिणाम तो देखना चाहिए ना, अपने दोष को देखना चाहिए ना। आहाहा! दोष देखना, वो विवेक है। भाई! दोष देखना, उसका नाम ही अविवेक, अज्ञान, मिथ्यात्व है। तू निर्दोष आत्मा को देखने की बात भूल जाता है और दोष को, यानि कषाय का दर्शन रोज उठकर करता है। कषाय है ना, शुभभाव कषाय है कि नहीं? कि वीतरागभाव है? आहाहा!

पहले के काल की बात थी, अभी तो मालूम नहीं है। फज़ल (सुबह) में उठे ना फज़ल में, तो कोई ऐसा झाड़ू मारनेवाला, हरिजन, साफ करनेवाला है (दिख जाये), (तो) अरेरे! मेरा दिन बिगड़ गया आज। क्या हो गया तेरे को? समझे? कि वो झाड़ूवाला (दिखाई दे गया), दिन बिगड़ गया। अच्छा! तो वो कषाय का दर्शन करता है, उसमें भव बिगड़ जाता है। उसमें तो दिन बिगड़ा, कषाय करने में तो भव बिगड़ा ही है। करने की बात तो दूर रहो, मगर कषाय को जानने से आहाहा! भव बिगड़ गया तेरा। अभी भव सुधारना हो तो मौका है, टाइम है, अभी। अन्तर्मुहूर्त का टाइम आयुष्य हो, तो बस है। अन्तर्मुहूर्त का टाइम हो, आयुष्य इतना तो है, इतना तो है। है कि नहीं? आहाहा! अब ये विषय बदल दे, तेरे ज्ञान की पर्याय का विषय जो राग-द्वेष है....ज्ञान में करने की बात तो है ही नहीं। आहाहा! ज्ञान का स्वभाव तो जानना है, करने का स्वभाव नहीं है और जानने के स्वभाव में आने पर भी कषाय को सावधानी देता है। इतना आज दोष हुआ, पाप किया, पुण्य किया। काल रात को आया था ना। सर्वे (survey) तो निकाल कि सारे दिन में कितना पुण्य और कितना पाप किया। और पाप और पुण्य के अंदर सावधानी रखता है, ऐसा पाठ है। आचार्य भगवान का ऐसा पाठ है, पंचास्तिकाय में।

व्यवहार के पक्ष के नाम में जब उसका खुलासा करते हैं, तो व्यवहार के पक्षवाला जीव, सारे

दिन, चौबीस घंटे, उसमें सावधान रहता है कि कहीं पाप तो न लग जाये। ये क्रिया में कहीं पाप तो आ जाये नहीं। आहाहा! सारे दिन पाप न आवे, उसकी सावधानी रखता है। और पुण्यभाव शुभभाव आता है, तो उसको अंदर उल्लास और हर्ष आता है, (जिससे) आत्मा का नाश होता है। आहाहा! उसको देखने की चक्षु बंद कर दे। आहाहा! एक दफ़े तो बंद कर। पहला गुणस्थान तो है ही, पहले में से तो कोई शून्य तो, गुणस्थानातीत तो होनेवाला नहीं है। ट्राई तो कर, कोशिश तो कर, एक दफ़े पर को जानना बंद कर दे। आहाहा! तेरे भगवान आत्मा का दर्शन हो जायेगा। ये दर्शन करने की विधी है!

तो **चेतयिता पुद्गलादिका हो तो क्या हो - इसका प्रथम विचार करते हैं।** यानि आत्मा परपदार्थ को जाननेवाला हो, जाननेवाला हो, तो क्या गुण आता है कि दोष आता है, क्या है, अपने विचार करो। साथ में बैठकर, विचार। "ऊंडी मीमांसा" गहरायी से विचारना। '**जिसका जो होता है वह वही होता है, जैसे आत्माका ज्ञान होनेसे ज्ञान वह आत्मा ही है;' - ऐसा तात्विक संबंध जीवित (विद्यमान) होनेसे**... आहाहा! विद्यमान है। आत्मा का ज्ञान ही होता है, सबको। आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान सो आत्मा है। राग का ज्ञान होने से आत्मा रागमयी दृष्टि में आ जाता है। अज्ञान है वो तो। राग का ज्ञान आज तक किसी को हुआ नहीं। छहद्रव्य का ज्ञान आज तक किसी को हुआ नहीं। सबको आत्मा का ज्ञान हुआ है भूतकाल में, वर्तमान में हो रहा है (और) भावीकाल में भी आत्मा का ज्ञान होगा, क्योंकि ज्ञान और ज्ञायक अभेद है। जो भेद है उसको जानता नहीं है। अभेद को जानता है। आहाहा! अभेद को जानने से अभेद होता है और बाद में अभेद सादि-अनंतकाल रह जाता है। आहाहा!

आज आखिर का (व्याख्यान) है ना। आहाहा! हरखजमण। समझे? हमारे वहाँ हरखजमण। आहाहा! बादाम का मैसूब (मैसूरपाक)। मूँग की दाल का तो हलवा आया इधर। हें? जीमा (खाया) ना सबने? मगर ये बादाम का मैसूब (मैसूरपाक) है। आहाहा!

क्या फ़रमाते हैं? एक दफ़े तेरा पक्ष छोड़ दे। करने का पक्ष तो, उसमें तो दीवासली (माचिस की तीली) लगा दे। भाईसाहब कहते हैं। दीवासली लगा दे। आहाहा! जैनदर्शन में करने की बात तो है ही नहीं। हाँ! शास्त्र में बहुत जगह आती है, वो व्यवहार दर्शाया है, निषेध करने के लिये। व्यवहार दर्शाते हैं, निषेध करने के लिये। उपादेय करने के लिये व्यवहार दर्शाया नहीं है। आहाहा!

व्यवहारनय संयोग का ज्ञान कराता है। निश्चयनय स्वभाव का ज्ञान कराता है। क्या कहा? फिर से। व्यवहारनय संयोग का ज्ञान कराता है कि परिणाम है, कर्म है, शरीर है, ये सब है। व्यवहारनय संयोग का ज्ञान कराता है, यहाँ तक उसकी लिमिट है। वो स्वभाव का ज्ञान करने में वो कामयाब (नहीं होता)। और निश्चयनय जो स्वाश्रित, वो स्वभाव का ज्ञान कराता है। व्यवहारनय संयोग का ज्ञान कराता है। संयोग का ज्ञान कराता है। नय का धर्म जानना है, करना नहीं है। जो नय में करना लगाया, तो अज्ञान हो गया। आहाहा! नय का प्रयोग जानने तक रख। भले निश्चयनय, व्यवहारनय दो नय हैं, सर्वज्ञ भगवान ने कहा है, मगर नय का धर्म तो जानना है। भेद को जाने सो व्यवहारनय। अभेद को जाने सो निश्चयनय और भेद को करे, (वो तो) नय ही नहीं रही। आहाहा! वो तो एजेंडा पर है ही नहीं। आहाहा! करने की बात तो, (जो) ईश्वर (को) कर्तावादी मानता है, उसके घर में है। उसके घर (में है)। हमारे घर

में वो बात नहीं है। (वो) अन्यमति है।

आत्मा को कर्ता मानता है, वो स्वमत नहीं है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव जानना। किसको जानना, (वो) बाद में रख। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव जानना। अभी किसको जानना और किसको नहीं जानना, उसमें रहस्य है। वो बात इधर आती है।

'**जैसे आत्माका ज्ञान होनेसे ज्ञान वह आत्मा ही है;' - ऐसा तात्विक संबंध... जीवंत।** आहाहा! जीवंतस्वामी, सीमंधर भगवान हैं ना, जीवंतस्वामी (हैं), ऐसा बियावर में लिखा है। बियावर में सीमंधर भगवान कि बियाना, बियाना। हाँ! बियाना। बियाना में एक सीमंधर भगवान की प्रतिमा गुरुदेव ने बताया आहाहा! कि ये सोनगढ़वाला ने सीमंधर भगवान की प्रतिमा का नया चीला (चलन) पाड़ा। नया चलन नहीं है, पाँच सौ साल पहले, उसका संवत लिखा है उसमें। पाँच सौ साल पहले का सीमंधर भगवान की प्रतिमा, बियाना, बियाना, बियाना में अभी विद्यमान है। उसमें लिखा है जीवंतस्वामी। जीवंत, हैयात हैं अभी। अभी सीमंधर भगवान हैयात हैं। अभी भी स्वर्ग के देव वहाँ समवशरण में जाता है। आहाहा!

मुमुक्षुः- महाविदहक्षेत्र के जीवंतस्वामी, सीमंधारनाथ।

उत्तरः- सीमंधरनाथ प्रभु विराजमान हैं। आहाहा!

तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि भाई! तेरे ज्ञान में परपदार्थ जानने में आता है, वो ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ, वो भ्रांति है। व्यवहार नहीं है। ज्ञाता भी आत्मा और ज्ञेय भी आत्मा। इतना भेद करने से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता है। तो अभेद में भेद करना सो पाप है और जो भिन्न है, वो मेरा ज्ञेय है, वो तो पाप का बाप हो गया। वो तो पाप का बाप हो गया। आहाहा!

अभेद में भेद करना, साधक, किसी को समझाने के लिये वो पुण्यतत्त्व है, धर्मतत्त्व नहीं है। मगर अभेद का भेद जो नहीं है और भिन्न है, वो उसको ज्ञेय बनाना, वो तो पाप का बाप है। पुण्य भी पाप और....आहाहा! पाप को पाप तो सभी कहें, पुण्य को पाप कोई विरला योगी कहता है। मिथ्यात्व का पाप किसी को पाप ही नहीं लगता। ये तो जब ज्ञानी का, अनुभवी का जन्म होता है, तब ये मिथ्यात्व की चर्चा चलती है। तहाँ तक तो पुण्य और पाप, पुण्य और पाप। हिंसा, झूठ, चोरी, उसका नाम पाप। अहिंसा आदि का भाव, पाँच महाव्रत का, देशव्रत का भाव, पुण्य। और पाप और पुण्य, दो भाव चलते थे। यानि आस्रव-बंध चलते थे, संवर आया नहीं।

...**होनेसे, चेतयिता यदि पुद्गलादिका हो तो**..., यानि पुद्गल को जाने आत्मा, ऐसा स्वभाव हो तो **चेतयिता वह पुद्गलादि का ही होवे।** आहाहा! ये ज्ञाता परज्ञेय को जाने, तो ये दृष्टि में ये ज्ञेय-ज्ञायक संकरदोष हो गया। ये ज्ञेय से भिन्न ये ज्ञेय जानने में नहीं आया, ये ज्ञेय से भिन्न ये ज्ञेय जानने में नहीं आया। ज्ञान में और ये ज्ञेय जानने में आता है, तो ज्ञान और ज्ञेय की एकत्वबुद्धि हो जाती है। आहाहा! जो जिसको जाने उसकी प्रतीति होती है। जाने हुए का श्रद्धान, गुजराती में। जाने हुए का श्रद्धान हो जाता है। जानना बंद कर दे, तो मिथ्यादर्शन भी बंद हो गया। आहाहा! आत्मा को जान तो जाने हुए का श्रद्धान इधर, आहाहा! सुलटा हो जाता है।

पुद्गलादिका हो तो चेतयिता वह पुद्गलादिका ही होवे (अर्थात् चेतयिता पुद्गलादिस्वरूप

ही होना चाहिए, पुद्गलादिसे भिन्न द्रव्य नहीं होना चाहिए); ऐसा होने पर, चेतयिताके यानि ज्ञाता के **स्वद्रव्यका उच्छेद हो जायेगा।** मैं परद्रव्य को जानता हूँ, उसका नाम भ्रांति। और मिथ्यात्व न लिखकर, एक आगे की सूक्ष्म बात करते हैं। आहाहा! मैं पर को जानता हूँ, ऐसी मिथ्याबुद्धि से आत्मा का ही नाश हो गया। दृष्टि में आत्मा रहा नहीं, तो उसका नाम नास्तिक है। अध्यात्म में तो सम्यग्दृष्टि को आस्तिक कहते हैं। मिथ्यादृष्टि को (नास्तिक कहते हैं)। आहाहा!

बाबूजी:- अपनी अस्ति को स्वीकार नहीं किया।

उत्तर:- अपनी अस्ति को जिसने स्वीकार नहीं किया और जिसके साथ अपना कोई प्रयोजन नहीं है, सारे दिन उसकी पर की प्रसिद्धि (का) ज्ञान करे, वो नास्तिक हो गया। आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय तो सबको आ गया, बाद में सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है, ऐसा प्रश्न बहुत आता है। इसका खुलासा इसमें है कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय जब तक नहीं प्रगट होगा, तब दृष्टि का विषय आने पर कोरा और कोरा रह जायेगा। (दृष्टि का विषय) दृष्टि में आयेगा नहीं। द्रव्य का निश्चय (है कि) परिणाममात्र से भिन्न (और) ज्ञान की पर्याय का निश्चय (है कि) केवल शुद्धात्मा को जानना, बस। ज्ञायक को जानना, उसका नाम ज्ञान की पर्याय का निश्चय है, आहाहा! पर को जानना नहीं। और स्व-पर को जानना निश्चय नहीं है क्योंकि स्व-पर में अभेद नहीं होती है ज्ञान की पर्याय। क्या कहा? संध्या!

बाबूजी:- स्व में ही अभेद होती है।

उत्तर:- स्व में ही अभेद होती है, तो स्व का ही ज्ञान उसका नाम निश्चय है। आहाहा! जिसके साथ ज्ञान की पर्याय कथंचित् अभेद होती है, उसका नाम ज्ञान की पर्याय का निश्चय है। राग के साथ अभेद नहीं होती है, इसलिए ज्ञान की पर्याय का नाम निश्चय नहीं होता है। वो तो अज्ञान हो गया। और स्वपरप्रकाशक, स्व और पर दो को जाने, ये यथार्थ हो तो स्व-पर के साथ अभेद होना चाहिए, मगर स्व-पर के साथ ज्ञान की पर्याय तीनकाल में अभेद नहीं होती है। अकेला स्व में अभेद होती है, तो ज्ञायक तो ज्ञायक, वो आत्मा है। आहाहा! अभी आयेगा।

स्वपरप्रकाशक क्यों स्वभाव नहीं (है)? (क्योंकि) वो प्रमाण है, नय नहीं है। प्रमाण का विषय हो गया। ज्ञान की पर्याय दो को जाने तो क्या दो में अभेद होती है? तीनकाल में अभेद नहीं होती है। एक में ही अभेद होती है। एक को जानने से एक में अभेद होता है। दो को जानने से किसी में अभेद होता नहीं, अज्ञान बन जाता है। आहाहा!

बाबूजी:- अभेद लगता है।

उत्तर:- आहाहा! ये भिण्ड की शिविर अच्छी चली। आहाहा! भिण्ड भाग्यवान है, ऐसा लगता है। भिण्ड में सब बाहर से आया, वो भिण्डवाला हो गया, ऐसा ही समझना। समझे? पाँच-छह दिन रहे बाहर गाँववाला, वो भी भिण्ड (में) ही रहता है। भिण्ड (में) ही रहता है ना। उसके गाँव में रहता है कि इधर रहता है? हाँ! तो भिण्डवाला हो गया सब। आहाहा! अभेद। समझे? भेद नहीं कि ये भिण्डवाला और ये वहाँ से आया और ये वहाँ से आया और करहल से आया और एक वहाँ से आया, ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा का दर्शन ज्ञान की पर्याय के निश्चय से होता है। ख्याल ही नहीं है कि ज्ञान

की पर्याय का निश्चय क्या। चर्चा ही नहीं चलती है। क्या कहा? इस जाति की चर्चा (ही) नहीं चलती है। भाईसाहब ने कहा कि नहीं चलती है। बोलो! चले तो काम हो जाये। चलाने जैसी है। विद्वान को वो चलाना चाहिए कि ज्ञान की पर्याय का निश्चय केवल स्वप्रकाशक है। स्व को ही प्रसिद्ध करता है, पर को प्रसिद्ध नहीं करता है। तो ज्ञान अंतर्मुख होकर आत्मदर्शन हो जाता है। आहाहा!

मुमुक्षुः- अब चलेगी साहब! अब चलेगी।

उत्तरः- चलेगी ऐसा लगता है। मेरे को तो लगता है कि ये गुरुदेव की जो वाणी है, उसने सत्य का प्रकाशन, उद्घाटन, प्रकाशन किया है, वो सत्य का भड़का होनेवाला है। तभी अभी थोड़ा दब गया है ऐसा लगता है, मगर सत्य कभी दबनेवाला नहीं है और कोई इसको दबा सकता नहीं है। ये तो भड़का होनेवाला है। (गुरुदेव का जयकारा)

किसी को, कभी-कभी, अभी गड़बड़ होती है तत्त्व के बारे में, ऐसा है, वैसा नहीं है और ऐसा है। भले! गड़बड़ हो कभी, थोड़े टाइम के लिए है, बाद में तो भड़का होनेवाला है। आहाहा! ऐसा जीव भी निकलेगा, ऐसा जीव भी निकलेगा। (एक) जीव नहीं (बहुत) जीव निकलेंगे। जीव नहीं, एक, आहाहा! अनेक पकेंगे। आहाहा! ऐसी वाणी है, चमत्कारिक उनकी। पंचमकाल के आखिर तक ये गुरुवाणी जीवों को सम्यग्दर्शन में निमित्त होनेवाली है। आहाहा! इतना स्पष्टीकरण कर गए, आहाहा! पक्षपात में पड़ना नहीं। पक्षपात में पड़ने से ज्ञान कुंठित हो जाता है। हिन्दी में क्या? हाँ! कुंठित हो जाता है। ये शब्द चाहिए। मंद नहीं, आहाहा! कुंठित हो जाता है। पक्षपात में बिगड़ जाता है। राग-द्वेष की प्रवृत्ति हो जाती है, पक्षपात में राग-द्वेष की... आहाहा! पक्षपात में नहीं पड़ना, भैया! ये मनुष्यभव फिर से कब मिले, उसका ठिकाना नहीं है। आहाहा! मौका आ गया है, सब अवसर आ गया है। आहाहा! मनुष्यभव मिला, देव-गुरु-शास्त्र मिले, कुन्दकुन्द भगवान की वाणी मिली, उसका स्पष्टीकरण करनेवाले गुरुदेव मिले, आहाहा! इतना बस है। कभी-कभी बहुत दुख होता है कि ये जीव क्या करते हैं? पक्षपात में पड़ गया। तत्त्व रह गया, तत्त्व एक बाजू रह गया। आहाहा!

आत्मा के साथ पर को किसी का संबंध नहीं है, ऐसा करके द्रव्य और पर्याय, वर्तुल में आकर पर्याय को जानना बंद कर दे और द्रव्य को जाने, उसका नाम ज्ञान की पर्याय का निश्चय है। आहाहा! **चेतयिताके स्वद्रव्यका उच्छेद हो जायेगा।** मैं पर को जानता हूँ, नास्तिक हो गया तू। बड़ा दोष है। छोटा दोष (नहीं है)।